बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 3, Issue 3, July-September, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971

गढ़वाल हिमालय के लोक वाद्य एवं उनकी धार्मिक महत्ता

नवीन चंद्र भट्ट. प्रो. गुड्डी बिष्ट पंवार
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
हे.न.ब. गढ़वाल (केंद्रीय) विश्वविद्यालय,
श्रीनगर–गढ़वाल 246174

सार :–
गढ़वाल हिमालय अपनी अनूठी लोक संस्कृति के लिए सम्पूर्ण भारतवर्ष में विशेष महत्व रखता है। गढ़वाल हिमालय में मांगलिक कार्यो, धार्मिक उत्सव एवं मेले त्योहारों के अवसर पर लोक वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। जो जनमानस में एक नवीन चेतना, हर्ष और उमंग का संचार करते है। गढ़वाल हिमालय में लोक वाद्यों का प्रयोग प्राचीन काल से ही किया जाता रहा है। लोक देवताओं निरंकार, भैरव, नगेलो, भैरू, ऐड़ी–आँछरियों के जागरण में विभिन्न प्रकार के वाद्य जिनमें ढ़ोल–दमाऊ, डौर, हुडका, काँसे की थाली का प्रयोग, वही युद्ध के समय वीर भड़ों में वीरता का संचार करने के लिए ढ़ोल–दमाऊ के साथ नगाड़ा, रणसिंघा व तुरी का प्रयोग किया जाता था। गढ़वाल हिमालय में प्राचीन लोक वाद्यों के संरक्षक में पेशेवर जातियाँ औजी(आवजी), बद्दी (बेडा) व मिरासी का मुख्य योगदान रहा है। जिन्होंने इस परंपरा को वर्तमान समय में भी सुरक्षित रखने का कार्य किया है।

बीज शब्द :– गढ़वाल हिमालय, लोक संस्कृति, लोक वाद्य, औजी, बद्दी, मिरासी, ढ़ोल–दमाऊ, रणसिंघा, मशकबीन, डौर, हुडका, भाणा–भंकोरा।

प्रस्तावना :–
गढ़वाल हिमालय के लोक संगीत में लोक वाद्यों का प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। लोक वाद्य की यह प्राचीन परंपरा एक पीड़ी से दूसरी पीड़ी को हस्तान्तरित होती रही है। जिस कारण उन्हे वाद्य की कला, उसके नियम, सिद्धांत, ताल, लय और ज्ञान विरासत के रूप में प्राप्त हुई है। लोक वाद्य का निर्माण आसानी व सुगमता से प्राप्त होने वाली धातु पीतल, ताँबा और सांदण, साल और अंयार की लकड़ी से किया जाता है। धातु से बनने वाले वाद्य का कार्य टम्वटा व लकड़ी से बनने वाले वाद्य का निर्माण मिरासी व्यावसायिक जातियों द्वारा किया जाता है। गढ़वाल हिमालय में ''डमरू (डौरू), थाली, ढोल, दमाऊँ, हुडकी (हुड़का, धौसा) बाँसुरी, अलगोजा, मुरली, (जौल मुरली), मोछंग (बिणाई बीमू,) ढोलकी (ढोलक) रणसिंगा, नगाड़ा, भँक्वरी, शिण्याई (शहनाई), तुरी घटी, सींग, मशकबीन, लगभग बत्तीस प्रकार के वाद्ययंत्र हैं। इनकी अपनी–अपनी विशेषताएं हैं। अपनी–अपनी भूमिकाएँ हैं। वाद्य यंत्रों में महादेव के डमरू को ही संसार का सबसे पहला आदि वाद्य यंत्र माना जाता है। उनके डमरू से ही हमारी ध्वनियाँ निकली हैं।''[1] ढ़ोलसागर संग्रह में गढ़वाल हिमालय के वाद्य यंत्रों को चार भागों में विभाजित किया गया है।

1. चर्म वाद्य 2. सुषिर वाद्य 3. तार वाद्य 4. धातु वाद्य

1. चर्म वाद्य
गढ़वाल में ढ़ोल–दमाऊ का वादन पेशेवर जाति औजियों द्वारा किया जाता है। जिन्होंने इस प्राचीन परम्परा को अपनी पीढी दर पीढी वर्तमान समय में संरक्षित करने का कार्य किया है। गढ़वाल के चर्म वाद्य में ढ़ोल और दमाऊ प्रमुख हैं, जिन्हे धार्मिक व मांगलिक कार्यों के शुभ अवसर पर बजाया जाता हैं। सर्वप्रथम औजियों को ही निमंत्रण देकर शुभ कार्य का आरम्भ किया जाता है। औजी आतिथ्य स्वीकार कर मंगलाचरण, कुलाचार व धुँयाल तालों से कार्य की सफलता के लिए प्रार्थना करते हैं।

ढ़ोल :– ढ़ोल गढ़वाल का प्रमुख वाद्य है। ढ़ोल का निर्माण ताँबे, पीतल व वर्तमान समय में चाँदी की धातु से किया जा रहा है। किन्तु इनमे ताँबे का ढ़ोल सबसे अच्छा माना जाता है। ढ़ोल के एक पुड़ को लकड़ी तथा दूसरे पुड़ को हाथ के थाप से बजाया जाता है। लकड़ी से बजाने वाले भाग पर भैस या बारहसिंघा की खाल तथा हाथ से थाप वाले भाग पर बकरी या हिरन की खाल का प्रयोग किया जाता है। गढ़वाल हिमालय में ढ़ोल के सभी अंगों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है –

1. **''कन्दोटी** – सूत की बुनी स्कन्द पट्टिका
2. **चाक** – कंदोटी को साधने वाले ताम्र कुण्डल
3. **विजैसार** – दोल के दक्षिण और वाम खण्डों को जोडने वाली 1 1/2 फीट पीतल की पट्टिका
4. **पुडी** – ढोल के द्वायें और बायें मुखों पर मढी जाने वाली चर्माच्छादिनी,
5. **कुण्डली** – पुडी को संभालाने वाली बाँस की कुण्डली
6. **त्रिदेव** – विजैसार के दोनों छोरों को जोडने वाली तीन ताम्र मेखलाएँ
7. **कस्णिका** – सूत की या चमडे की बनी ढ़ोल को सुर करने वाली गुच्छयाँ
8. **डोरिका** – ढोल पर पुडीयों को साधने वाली सूत की डोरी और
9. **लाँकुड या गजाबल** – बजाने की लकडी जिसकी लम्बाई 1 1/4 होती है।''[2]

ढ़ोलसागर में ढ़ोल के सम्बन्ध में कहा गया है की प्रलय के बाद संसार में नवीन चेतना के संचार हेतु देवी पार्वती, ब्रह्मा, विष्णु और भगवान शिव नें स्वयं ढ़ोल की उत्पत्ति की। जिस कारण इसे शिवजंत्री भी कहा जाता है। ढ़ोल के सभी भाग ब्रह्मा, पवन, भीम, विष्णु, नाग और कुर्म देवताओं से सम्बन्धित हैं।

"आपु पुत्रं भवे ढ़ोलं, ब्रह्म पुत्रं च डोरिका।
पौन पुत्रं भवे नादम् , भीम पुत्रं गजावलम् ।।
विष्णु पुत्रं भवे पुड़म् , नाग पुत्रं कुंडलिका ।
कुरूम–पुत्रं कंदोटिया,' गुणी पुत्रं च कस्णिका ।।"[3]

इसी प्रकार दिशाएं ढ़ोल का मूल, पच्छम ढ़ोली साखा, दक्खण ढ़ोली उदर और पूरब ढ़ोली नेत्र हैं।

"उत्तर ढ़ोली ढ़ोल का मूलम्
पच्छम ढ़ोली ढ़ोल की साखा।
दक्खण ढ़ोली ढ़ोल का पेटम्
पूरब ढ़ोली ढ़ोल का आँखा ।।"[4]

दमौं या दमाऊ – दमाऊ ढ़ोल का सहायक वाद्य है। जो ढोल के साथ मिल कर वाद्य की तालों को पूर्ण करता है। ''दमौं की बनावट 1 फुट व्यास के लगभग 8 फीट गहरी कटोरा के समान होती है। यह भी तांबे का बना होता है इसके मुख पर भैंसे की मोटी खाल की पुडी मढी होती है। दमौं के शेष भाग पर 32 शरों (कुंडली रन्ध्रों) की सहायता से पूडी को स्थिर रखने और खींचने के लिए चमड़े की तांतों की जाली बुनी जाती है।''[5] गढ़वाल हिमालय में धार्मिक नृत्यों के अवसर पर ढ़ोल–दमाऊ के बोल इस प्रकार हैं।

1. **''नरसिंह – जिकता ताकड़ी डिमटा, टिकड़ी धन्न, धिकड़ी टिंट टिकड़ीं।**
2. **नागराजा – ताक जैकतु ताज न कु।**
3. **हंत्या – जिकता तिकड़ी, जिकता तिकड़ी।**
4. **आंछरी – तक तक तक तक झिग जन ताक, ताकता जिन्ना तक, तकड़ी तक।**
5. **निरंकार– जिग जनक तकड़ी, जिग जनक तकड़ी।**
6. **नगेला – झिगत तकड़ी।।"[6]**

ढोलक :– ढोलक बनाने का कार्य गढ़वाल में चुनारा जाति के शिल्पकारों द्वारा किया जाता है। ढोलक बनाने में आम, टीक या साल की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। पूड़ी में हिरन या लंगूर की खाल उपयोग में लायी जाती है। बाँयी पूड़ी पर सियार की चर्बी व अरंडी के बीजों की स्याही को लगाया जाता है। ''ढोलकी (ढोलक) पहाड़ में विशेषज्ञ रूप से वादी ही बजाते हैं, बड़े–बड़े मेलों में, उत्सवों में, त्यौहारों के अवसरों पर, मनोरंजन के लिए वादी ढोलकी बजा–बजा कर नाचते, गाते और वादीण रंग–बिरंगे घाघरे पहन कर छमछम नाचती गाती अपने अनुपम अभिनय और हाव–भावों से ऐसी धूम मचाती कि दर्शक भावविह्वल हो जाते।''[7]

हुडका या हुड़की :– चर्मवाद्यों में हुड़की का महत्वपूर्ण स्थान है। हुड़की का जागर गीतों एवं लोक गीतों में प्रयोग किया जाता है।''हुड़की की दीवार 1.4 इंच मोटी होती है। इसकी लम्बाई 1 फुट 3 इंच के लगभग होती है, तथा दोनों मुखों पर चढ़ाई गयी पुड़ियों का व्यास 6 या 7 इंच से अधिक नही होता, हुड़की की कमरी (कटि प्रदेश) की परिधि 10 इंच के बराबर होती है। हुड़की की दोनों पुड़िया बकरी के अमाशय की भीतरी खाल से बनाई जाती है। कुण्डली रन्ध्रों से 1 1.4 लम्बाई के सूत 6 गाछे चढ़ाये जाते है।''[8]

डौंर :– डौंर या डमरू भगवान शिव का प्रिय वाद्य है। डमरू को बजाने से ही स्वरों की उत्पत्ति हुई थी। ''डमरू लोकगीत (जागर, पूजागीत आदि) लोककथाएँ (वार्ता आदि) और पौराणिक कथाएँ आदि के समय, थाली के साथ बजाया जाता है। चाहे आछरियों (अप्सराओं) का नृत्य हो चाहे देवी–देवताओं का मनुष्यों पर आ जाना हो, उनका नाचना अलौकिक– शक्ति–संम्पन्न हो जाना आदि कई प्रकार के नृत्यों में डौरू–थाली बजाए जाते हैं।''[9] डौर के निर्माण में ''सांदण की ठोस लकड़ी का बनाया जाता है। डौर के फ्रेम की दीवाल (''मोटी होती है। इसकी लम्बाई लगभग 8'' होती है तथा उसी अनुपात में दोनों की पुड़ियों के व्यास 10'' के लगभग होते है। डौंर की कमरी 10'' परिधि की होती है। डौंर की पुड़ियाँ बकरे की मोटी खाल की बनी होती है। पुड़ियों पर 12 रंध्र कुण्डली होते है। इन्ही रंध्रों से भांग की डोरिका पिरोकर डौंर की दोनों पुड़ियों को चढ़ाया जाता है।''[10]

2. सुषिर वाद्य

सुषिर वाद्य में मुँह से वायु का उपयोग कर ध्वनि निकाली जाती है। फूँक के प्रयोग से बजाये जाते हैं वें सुषिर वाद्य हैं। जिनमें रणसिंगा, भाणा,भंकोरा, बाँसुरी, मशकबीन, रामसौरी बाँसुरी(नौसुरी बांसुरी), शंख आदि प्रमुख हैं।

रणसिंघा :– रणसिंघा का उपयोग देव उत्सव व धार्मिक सामारोह में ढ़ोल– दमाऊ और तुरी के साथ बजाया जाता हैं, जिसकी स्वर लहरियों से देवता का पस्वा देव नृत्य के लिए प्रेरित होता है। प्राचीन समय ममें रणसिंघा का प्रयोग वीरों को उत्तेजित

करने के लिए रण भूमि में किया जाता था। रणसिंघा का निर्माण ताँबे और पीतल की धातु से बन कर होता हैं, इसके तीन भाग होते हैं, जिनको जोड़ कर इसका प्रयोग किया जाता है।

भंकोरा :– भंकोरा को देव उपासना व पूजन के समय पूजा में प्रयोग लाया जाता है। धुँयाल और नौबत में देव जाग्रत के लिए इस वाद्य का प्रयोग होता है। यह ताँबे और पीतल की धातु का बना बेलनाकार वाद्य है, इसकी गोलाई 2–4 इंच तथा लम्बाई 34–36 इंच होती है। ''देवताओं के पूजन और नर्तन में नौबत या धुयाँल के अवसर पर केवल सवणों के द्वारा ही यह वाद्य यंत्र बजाया जाता है।''[11]

बाँसुरी :– बाँसुरी गढ़वाल का प्रमुख वाद्य है। जिसका निर्माण बाँस या रिंगाल से किया जाता है। इसमें सात सुर होते है। गढ़वाल में लोकगीतों में सर्वाधिक प्रयोग बांसुरी का होता रहा है।

रामसौर बाँसुरी (अलगोजा) :– रामसौर बाँसुरी का निर्माण दो अलग बाँसुरियों से मिलकर होता है जिनको साथ मिलाकर बजाने पर मधुर रागिनीयाँ निकलती हैं। विवाह व मांगलिक कार्यों के अवसर पर लोक जीवन में इसका प्रयोग किया जाता है। ''अलगोजा दो बांसुरीयों को साथ–साथ मुँह में लेकर बजाया जाता है। खुडेड अथवा झुमैलो जैसे करुणा प्रधान गीतों को अलगोजे के स्वरों में गया जाता है।''[12]

मशकबीन :– मशकबीन गढ़वाल का प्रमुख वाद्य है। विवाह एवं मांगलिक कार्यों में इसका प्रयोग किया जाता है। मशकबीन में चमड़े के थैले में चार नलियाँ लगी होती है, चमड़े के थैले में हवा भर कर एक नली से स्वर बजाये जाते है व बाकी तीन सहायक स्वर देने का कार्य करती है।

शंख :– गढ़वाल में पूजा, देव उत्सव, मांगलिक कार्यों,धार्मिक जागरों के अवसर पर आरम्भ में शंख का नाद करके कार्य का शुभारम्भ किया जाता है। प्राचीन काल में युद्ध के समय शत्रुओं में भय के लिए शंख का नाद किया जाता था।

3. घन वाद्य

धातुओं से बने वाद्य कों घन वाद्य कहा जाता है। इन वाद्य यन्त्रों को बनाने में ताँबा, पीतल और काँसे की धातु का प्रयोग किया जाता है। गढ़वाल के घन वाद्यों में –

काँसे की थाली :– काँसे की थाली को जागर लोक गीतों में प्रयोग किया जाता है। डौंर और हुडका के साथ सहायक वाद्य के रूप में इसे बजाया जाता है। अपने स्वर के अनुसार जागरी काँसे की थाली का प्रयोग जागर में करता है। काँसे की थाली की मधुर और ह्रदयस्पर्शी ध्वनि के कारण माता पार्वती का स्वरूप माना जाता है। ''डौर थाली का वादन केवल ब्राह्मण पुरोहित ही करते हैं इसे घडियाली, घडियाला या घडियालो लोग कहते हैं। डौर–थाली बाजा बड़ी कौशल और शब्द–ताल से बजाया जाता है कुछ देवताओं को नाचने के लिए डौर–थाली की तालें इस प्रकार हैं–

1. **निरंकार – डेंग डेंग डींग टे टक टक ।**
2. **नरसिंह – डिमटी–डिमटी पड़ी, डिम–डिम–डिम टिपड़ी ।**
3. **नागर्जा (नागराजा) – डिंडी डिपड़ी तक तक तक धिन तक डिम।**
4. **आंछरी (अप्सरा) – डिम डिम ढिमीम डगटि डिंग डग डिन टिक ।**
5. **हन्त्या भूत – डिम डिम डिम डिम टि टिपड़ी।**''[13]

घंटी :– घंटी का प्रयोग पूजा, धार्मिक, मांगलिक एवं जागर के आरम्भ में देव जागृति के लिए किया जाता है। घंटी पीतल या काँसे की धातु की बनी होती है।

मोरछंग :– मोरछंग लोहे की 2 पतली छडियों से बना 3 इंच का वाद्य है। लोहे की दोनों छडियों के बीच की लचीली पत्ती कों छेडनें पर संगीत की ध्वनि इसमें से निकलती है। गढ़वाल में पशुचारक व घसियारी महिलाओं द्वारा एकान्त के पलों में इसे बजाया जाता है।

भाणु :– भाणु गढ़वाल का प्राचीन लोक वाद्य है। जिसे धार्मिक कार्यो के शुभ अवसर पर बजाया जाता है। इसका निर्माण अष्ट धातु से किया जाता है जिसे पैय्या के पेड़ की लकड़ी से बजाया जाता है।

4. तार वाद्य

गढ़वाल में तार वाद्य तंत्री वाद्य भी कहा जाता है, जिनमें पीतल और ताँबे की धातु की तारें लगी होती हैं। इन तारों कों अंगुलियों या लकड़ी के उपकरण की सहायता से बजाने पर संगीतमय ध्वनि निकलती है। तार वाद्य के अंतर्गत गढ़वाल में सारंगी और एकतारा का प्रयोग उत्सवों में किया जाता है।

सारंगी :– गढ़वाल में धार्मिक एवं मांगलिक कार्यों के अवसर पर सारंगी मिरासी या बाद्दीयों द्वारा बजाया जाता था। गढ़वाली सारंगी वर्तमान सारंगी से छोटी होती है। बाज और तरब के तार समान होते हैं।

एकतारा :– एक तारा को बनाने में लौकी की तुम्बी, चमड़े व लकड़ी के डंडे पर खूंटी के सहारे एक तार लगाया जाता है। जिसको अपने स्वर के अनुरूप स्वरबद्ध कर गायन के साथ बजाया जाता है। एकतारा का प्रयोग नाथपंथी जोगियों व साधुओं द्वारा नीतिपरक, उपदेशात्मक गीतों में किया जाता था। साथ ही लोक गीतों में भी इसका प्रयोग प्रचुरता के साथ मिलता है।

निष्कर्ष :–

लोक वाद्य लोक संस्कृति की जडों को पुष्ट करते हैं। संस्कृति की प्रगति और विकास लोक संगीत और वाद्य के प्रयोग पर निर्भर करती है। कहा जा सकता है की गढ़वाल हिमालय की उपत्यका में लोक वाद्य हर्ष, उमंग और उल्लास के परिचायक हैं। मांगलिक कार्यों जन्म, विवाह, नामकरण, मुंडन, जनेऊ संस्कार के समय व धार्मिक कार्यों पूजा, देव अनुष्ठान, देव यात्रा, लोक जागर के अवसर पर ढ़ोल, दमाऊ, हुडका, डौर, थाली, नगाड़ा, रणसिंघा, मशकबीन, नौसुरी बांसुरी, मोरछंग और भँकोरा का प्रयोग यहाँ की व्यावसायिक जातियों औजी, बद्दी, मिरासी, बाजगी, धौस्या, डौरिया द्वारा किया जाता हैं। वर्तमान समय में इन जातियों को इस क्षेत्र में संरक्षण और रोजगार नही मिल पाने के कारण अनेक लोक वाद्य विलुप्ति की अवस्था में हैं जिनमें प्रमुख रूप से सारंगी, एकतारा, भाणु, मशकबीन और रणसिंघा प्रमुख वाद्य हैं। आवश्यकता है की इस ओर संस्कृति से जुड़े लोगों का और सरकार का ध्यान आकृष्ट हो तभी गढ़वाल हिमालयी लोक जीवन की मान्यताएं, परम्पराएँ और लोक वाद्य की प्राचीन परम्परा संरक्षित रह सकती है।

सन्दर्भ :–

1. शैलेश, डॉ. हरिदत्त भट्ट, गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2007, पृष्ठ 312।
2. धसमाना, भवानीदत्त, ब्रह्मानन्द थपलियाल, प्रेमलाल भट्ट, ढ़ोलसागर संग्रह, वीरगाथा प्रकाशन दो गड़ा गढ़वाल, प्रकाशन वर्ष 2052 वि.स., पृष्ठ 29।
3. धसमाना, भवानीदत्त, ब्रह्मानन्द थपलियाल, प्रेमलाल भट्ट, ढ़ोलसागर संग्रह, वीरगाथा प्रकाशन दो गड़ा गढ़वाल, प्रकाशन वर्ष 2052 वि.स., पृष्ठ 31।
4. धसमाना, भवानीदत्त, ब्रह्मानन्द थपलियाल, प्रेमलाल भट्ट, ढ़ोलसागर संग्रह, वीरगाथा प्रकाशन दो गड़ा गढ़वाल, प्रकाशन वर्ष 2052 वि.स., पृष्ठ 31 ।
5. धसमाना, भवानीदत्त, ब्रह्मानन्द थपलियाल, प्रेमलाल भट्ट, ढ़ोलसागर संग्रह, वीरगाथा प्रकाशन दो गड़ा गढ़वाल, प्रकाशन वर्ष 2052 वि.स., पृष्ठ 39।
6. नौटियाल, शिवानंद, गढ़वाल के लोक नृत्य, अमित प्रकाशन गाजियाबाद, प्रकाशन वर्ष 1976, पृष्ठ 189।
7. शैलेश, डॉ. हरिदत्त भट्ट, गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2007, पृष्ठ 313 ।
8. धसमाना, भवानीदत्त, ब्रह्मानन्द थपलियाल, प्रेमलाल भट्ट, ढ़ोलसागर संग्रह, वीरगाथा प्रकाशन दो गड़ा गढ़वाल, प्रकाशन वर्ष 2052 वि.स., पृष्ठ 42–43।
9. शैलेश, डॉ. हरिदत्त भट्ट, गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2007, पृष्ठ 312।
10. धसमाना, भवानीदत्त, ब्रह्मानन्द थपलियाल, प्रेमलाल भट्ट, ढ़ोलसागर संग्रह, वीरगाथा प्रकाशन दो गड़ा गढ़वाल, प्रकाशन वर्ष 2052 वि.स., पृष्ठ 45।
11. नौटियाल, शिवानंद, गढ़वाल का सांस्कृतिक वैभव, सुलभ प्रकाशन लखनऊ, प्रकाशन वर्ष 1994, पृष्ठ 220।
12. नौटियाल, शिवानंद, गढ़वाल का सांस्कृतिक वैभव, सुलभ प्रकाशन लखनऊ, प्रकाशन वर्ष 1994,
पृष्ठ 221।
13. नौटियाल, शिवानंद, गढ़वाल का सांस्कृतिक वैभव, सुलभ प्रकाशन लखनऊ, प्रकाशन वर्ष 1994, पृष्ठ 217।